

Chapter नौ

जड़ भरत का सर्वोत्कृष्ट चरित्र

इस अध्याय में भरत महाराज द्वारा ब्राह्मण शरीर धारण करने का वर्णन किया गया है। वे इस शरीर में जड़, मूक तथा बधिर की भाँति बने रहे, यहाँ तक कि जब उन्हें देवी काली के समक्ष बलि चढ़ाने के लिए प्रस्तुत किया गया तो उन्होंने कोई विरोध नहीं किया और शान्त बने रहे। मृग शरीर त्यागने के बाद उन्होंने एक ब्राह्मण की सबसे छोटी पत्नी के गर्भ से जन्म लिया। इस जन्म में भी उन्हें अपने

पूर्वजन्म की गतिविधियों का स्मरण बना रहा और समाज के प्रभाव से बचने के उद्देश्य से वे गुँगे तथा बहरे बन गये। इस बार वे पथच्युत होने से सतर्क रहे। उन्होंने किसी अभक्त के साथ मेल-जोल नहीं रखा। प्रत्येक भक्त को इस विधि का पालन करना चाहिए। जैसाकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने उपदेश किया है—*असत्संग-त्याग—एइ वैष्णव-आचार*। मनुष्य को चाहिए कि अभक्तों के संग से बिल्कुल दूर रहे, चाहे वे अपने स्वजन ही क्यों न हों। जब भरत महाराज ब्राह्मण शरीर में थे तो उनके पड़ोस के लोग उन्हें विक्षिप्त, जड़ व्यक्ति समझते थे, किन्तु वे अपने अन्तःकरण में भगवान् वासुदेव का निरन्तर जप तथा स्मरण करते रहते थे। यद्यपि उनके पिता उन्हें शिक्षा देकर तथा उनका उपनयन संस्कार करके पवित्र बनाना चाहते थे, किन्तु वे इस प्रकार बने रहे कि उनके माता-पिता उन्हें विक्षिप्त समझें और सुधारने के किसी कार्य में रुचि न लें। इतने पर भी वे किसी प्रकार का अनुष्ठान किये बिना कृष्ण के भक्त बने रहे। उनके मूक रहने से कुछ पशुतुल्य मनुष्यों ने उन्हें अनेक प्रकार से तंग करना प्रारम्भ कर दिया, किन्तु वे सब कुछ सहते रहे। माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् उनकी विमाता तथा सौतेले भाई उनके साथ दुर्व्यवहार करने लगे। वे उन्हें सबसे निकृष्ट भोजन देते, किन्तु वे इसकी तनिक भी परवाह न करते। वे कृष्णभावनामृत में डूबे रहते। एक रात को उनके सौतेले भाइयों और माता ने उन्हें धान के खेत की रखवाली करने का कार्य सौंपा। उस समय डाकुओं के एक दल ने उनका अपहरण कर लिया और भद्रकाली पर उनकी बलि देनी चाही। किन्तु जब डाकुओं ने देवी काली के समक्ष भरत महाराज को मारने के लिए कटार उठाई तो देवी काली अपने भक्त के प्रति इस दुर्व्यवहार से चौंक उठीं। वे मूर्ति में से प्रकट हुईं और अपने हाथों में कटार लेकर उन सभी डाकुओं का वध कर दिया। इस प्रकार भगवान् का शुद्ध भक्त अभक्तों के दुर्व्यवहार के प्रति मूक बना रह सकता है। जो चोर तथा उचक्रे भक्तों के साथ दुर्व्यवहार करते हैं उन्हें अन्ततः भगवान् दण्ड देते हैं।

श्रीशुक उवाच

अथ कस्यचिद्दिवजवरस्याङ्गिरःप्रवरस्य

शमदमतपःस्वाध्यायाध्ययनत्यागसन्तोषतितिक्षाप्रश्रयविद्यानसूयात्मज्ञानानन्दयुक्तस्यात्मसदृशश्रुतशीलाचा
ररूपौदार्यगुणा नव सोदर्या अङ्गजा बभूवुर्मिथुनं च यवीयस्यां भार्यायाम्यस्तु तत्र पुमांस्तं परमभागवतं
राजर्षिप्रवरं भरतमुत्सृष्टमृगशरीरं चरमशरीरेण विप्रत्वं गतमाहुः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा; अथ—तत्पश्चात्; कस्यचित्—किसी; द्विज-वरस्य—ब्राह्मण के; अङ्गिरः-प्रवरस्य—अंगिरा गोत्र के; शम—मन का नियंत्रण; दम—इन्द्रियों का नियंत्रण (दमन); तपः—तपस्या; स्वाध्याय—वैदिक साहित्य का पठन; अध्ययन—अध्ययन; त्याग—त्याग; सन्तोष—सन्तोष; तितिक्षा—सहिष्णुता; प्रश्रय—विनय; विद्या—ज्ञान; अनसूय—ईर्ष्यारहित; आत्म-ज्ञान-आनन्द—आत्म-साक्षात्कार में प्रसन्न; युक्तस्य—गुणसम्पन्न; आत्म-सदृश—तथा अपने ही समान; श्रुत—विद्या में; शील—चरित्र में; आचार—आचरण में; रूप—सुन्दरता में; औदार्य—उदारता में; गुणाः—समस्त गुणोंवाला; नव स-उदर्याः—एकही गर्भ से उत्पन्न नौ भ्राता, नौ सहोदर; अङ्ग-जाः—पुत्र; बभूवुः—उत्पन्न हुए; मिथुनम्—जुड़वाँ भाई तथा बहन; च—तथा; यवीयस्याम्—सबसे छोटी; भार्यायाम्—स्त्री से; यः—जो; तु—लेकिन; तत्र—वहाँ; पुमान्—पुरुष (लड़का); तम्—उसको; परम-भागवतम्—परम भक्त; राज-ऋषि—राजर्षि; प्रवरम्—अत्यन्त सम्मानित; भरतम्—महाराज भरत को; उत्सृष्ट—त्याग कर; मृग-शरीरम्—मृग का शरीर; चरम-शरीरेण—अन्तिम शरीर से; विप्रत्वम्—ब्राह्मणत्व; गतम्—प्राप्त किया; आहुः—उनका कथन है।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा, हे राजन्, मृग शरीर त्याग कर भरत महाराज ने एक विशुद्ध ब्राह्मण के कुल में जन्म लिया। वह ब्राह्मण अंगिरा गोत्र से सम्बन्धित था और ब्राह्मण के समस्त गुणों से सम्पन्न था। वह अपने मन तथा इन्द्रियों को वश में करने वाला तथा वैदिक एवं अन्य पूरक साहित्यों का ज्ञाता था। वह दानी, संतुष्ट, सहनशील, विनम्र, पंडित तथा किसी से न ईर्ष्या करने वाला था। वह स्वरूपसिद्ध एवं ईश्वर की सेवा में तत्पर रहने वाला था। वह सदैव समाधि में रहता था। उसकी पहली पत्नी से उसी के समान योग्य नौ पुत्र हुए और दूसरी पत्नी से जुड़वाँ भाई-बहन पैदा हुए जिनमें से लड़का सर्वोच्च भक्त तथा राजर्षियों में अग्रणी भरत महाराज के नाम से विख्यात हुआ। तो यह कथा है उसके मृग शरीर को त्याग कर पुनः जन्म लेने की।

तात्पर्य : भरत महाराज महान् भक्त थे, किन्तु उन्हें एक जन्म में सफलता नहीं प्राप्त हुई। भगवद्गीता में कहा गया है कि जो भक्त एक जन्म में भक्ति-कार्य पूरे नहीं कर पाता उसे किसी योग्य ब्राह्मण कुल में या सम्पन्न क्षत्रिय अथवा वैश्य कुल में जन्म लेने का सुअवसर प्रदान किया जाता है—*शुचीनां श्रीमतां गेहे*—(भगवद्गीता ६.४१)। भरत महाराज अपने प्रथम जन्म में क्षत्रिय कुल में महाराज ऋषभ के जेष्ठ पुत्र थे, किन्तु अपने आध्यात्मिक कार्यों की उपेक्षा करने तथा तुच्छ हिरण में अत्यधिक आसक्ति के कारण उन्हें मृग के पुत्र-रूप में जन्म लेना पड़ा। किन्तु भक्त होने की प्रबल स्थिति के कारण उन्हें पूर्वजन्म की स्मृति बनी रही। पश्चात्ताप के कारण वे एकान्त जंगल में रह कर सदैव श्रीकृष्ण का ध्यान धरते रहे। तब उन्हें एक उत्तम ब्राह्मण कुल में जन्म धारण करने का अवसर मिला।

तत्रापि स्वजनसङ्गाच्च भृशमुद्विजमानो भगवतः

कर्मबन्धविध्वंसनश्रवणस्मरणगुणविवरणचरणारविन्दयुगलं मनसा विदधदात्मनः प्रतिघातमाशङ्कमानो भगवदनुग्रहेणानुस्मृतस्वपूर्वजन्मावलिरात्मानमुन्मत्तजडान्धबधिरस्वरूपेण दर्शयामास लोकस्य ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

तत्र अपि—उस ब्राह्मण जन्म में भी; स्व-जन-सङ्गात्—अपने मित्रों तथा परिजनों की संगति से; च—तथा; भृशम्—अत्यधिक; उद्विजमानः—सदैव भयभीत रहते हुए कि कहीं पुनः भ्रष्ट न हो जाये; भगवतः—श्रीभगवान् का; कर्म-बन्ध—कर्म-फलों का बन्धन; विध्वंसन—विनष्ट करने वाले; श्रवण—सुनना; स्मरण—याद करना; गुण-विवरण—भगवान् के गुणों का वर्णन सुनना; चरण-अरविन्द—चरणकमल; युगलम्—दोनों; मनसा—मन से; विदधत्—सदैव ध्यान धरते हुए; आत्मनः—अपनी आत्मा का; प्रतिघातम्—भक्ति मार्ग में बाधा; आशङ्कमानः—सदैव सशंकित; भगवत्-अनुग्रहेण—श्रीभगवान् के अनुग्रह से; अनुस्मृत—स्मरण करते हुए; स्व-पूर्व—अपने पहिले; जन्म-आवलिः—जन्मों की शृंखला; आत्मानम्—स्वयं; उन्मत्त—पागल; जड—कुन्द, पत्थर तुल्य; अन्ध—अंधा; बधिर—बहरा; स्वरूपेण—स्वरूप के कारण; दर्शयाम् आस—प्रदर्शित किया, प्रकट किया; लोकस्य—सामान्य जनता को।

भगवत्कृपा से भरत महाराज को अपने पूर्वजन्म की घटनाएँ स्मरण थीं। यद्यपि उन्हें ब्राह्मण का शरीर प्राप्त हुआ था, किन्तु वे अपने स्वजनों तथा मित्रों से, जो भक्त नहीं थे, अत्यन्त भयभीत थे। वे ऐसी संगति से सदैव सतर्क रहते, क्योंकि उन्हें भय था कि कहीं पुनः पथच्युत न हो जाँय। फलतः वे जनता के समक्ष उन्मत्त (पागल), जड़, अंधे तथा बहरे के रूप में प्रकट होते रहे जिससे दूसरे लोग उनसे बात करने की चेष्टा न करें। इस प्रकार उन्होंने कुसंगति से अपने को बचाए रखा। वे अपने अन्तःकरण में सदा भगवान् के चरणकमल का ध्यान धरते और उनके गुणों का जप करते रहते जो मनुष्य को कर्म-बन्धन से बचाने वाला है। इस प्रकार उन्होंने अपने को अभक्त संगियों के आक्रमण से बचाए रखा।

तात्पर्य : प्रकृति के गुणों के संसर्ग से प्रत्येक जीव विभिन्न कर्मों से बँधा हुआ है। जैसाकि भगवद्गीता (१३.२२) में कथन है— कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु—“यह प्रकृति के संग के कारण है। इस तरह वह विभिन्न योनियों में उत्तम-अधम योनियाँ प्राप्त करता है।”

हम अपने कर्मों के अनुसार चौरासी लाख योनियों में से विभिन्न प्रकार के शरीर प्राप्त करते हैं। कर्मणा-दैव-नेत्रेण—हम तीन गुणों से दूषित प्रकृति के वश में रह कर कार्य करते हैं और इस प्रकार से हमें ईश्वर की आज्ञा से एक विशेष प्रकार का शरीर प्राप्त होता है। यही कर्म-बन्ध कहलाता है। इस कर्म-बन्ध से बाहर निकलने के लिए भक्ति में संलग्न होने की आवश्यकता होती है। तब मनुष्य पर प्रकृति के गुणों का प्रभाव नहीं पड़ता। भगवद्गीता के अनुसार (१४.२६)—

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।

स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

“जो पूर्णरूप से भक्तियोग के परायण है, जो किसी भी स्थिति में उससे डिगता नहीं वह अविलम्ब त्रिगुणमयी माया का लंघन करके ब्रह्म पद को प्राप्त होता है।” भौतिक गुणों के प्रति निश्चेष्ट बनने का उपाय है अपने को भक्ति में लगाना—*श्रवणं कीर्तनं विष्णोः।* यही जीवन की सिद्धि है। महाराज भरत ब्राह्मण रूप में जन्म लेकर ब्राह्मण कर्तव्यों में रुचि नहीं दिखाते थे, परन्तु वे भीतर ही भीतर शुद्ध वैष्णव रहकर ईश्वर के चरणकमल का निरन्तर चिन्तन करते रहे। *भगवद्गीता* का उपदेश है—*मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।* यही एकमात्र विधि है, जिसके द्वारा बारम्बार जन्म-मरण के भय से बचा जा सकता है।

तस्यापि ह वा आत्मजस्य विप्रः पुत्रस्नेहानुबद्धमना आसमावर्तनात्संस्कारान्यथोपदेशं विदधान उपनीतस्य च पुनः शौचाचमनादीन्कर्मनियमाननभिप्रेतानपि समशिक्षयदनुशिष्टेन हि भाव्यं पितुः पुत्रेणेति ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उस; अपि ह वा—निश्चय ही; आत्म-जस्य—अपने पुत्र का; विप्रः—जड़ भरत के ब्राह्मण पिता (विक्षिप्त भरत); पुत्र-स्नेह-अनुबद्ध-मनाः—पुत्र प्रेम के कारण मन बँध जाने से; आ-सम-आवर्तनात्—ब्रह्मचर्य आश्रम के समाप्त होने तक; संस्कारान्—संस्कारों को; यथा-उपदेशम्—शास्त्रों में वर्णित विधि के अनुसार; विदधानः—करते हुए; उपनीतस्य—जिसका उपनयन संस्कार हो, उसका; च—तथा; पुनः—फिर; शौच-आचमन-आदीन्—स्वच्छता-मुख, हाथ, पाँव धोने इत्यादि का अभ्यास.; कर्म-नियमान्—कर्म के विधि-विधान; अनभिप्रेतान् अपि—जड़ भरत के न चाहने पर भी; समशिक्षयत्—शिक्षा दी; अनुशिष्टेन—विधि-विधानों का पालन करना सिखाया; हि—निश्चय ही; भाव्यम्—हो; पितुः—पिता से; पुत्रेण—पुत्र; इति—इस प्रकार।

ब्राह्मण पिता का मन अपने पुत्र जड़ भरत (भरत महाराज) के प्रति सदैव स्नेह से पूरित रहता था। उससे सदा अनुरक्त रहते थे। क्योंकि जड़ भरत गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिए अयोग्य थे, अतः ब्रह्मचर्य आश्रम की समाप्ति तक ही उनके संस्कार पूरे हुए। यद्यपि जड़ भरत अपने पिता की शिक्षाओं को मानने में आनाकानी करते तो भी उस ब्राह्मण ने यह सोचकर कि पिता का कर्तव्य है कि अपने पुत्र को शिक्षा दे, जड़ भरत को स्वच्छ रहने तथा प्रक्षालन करने की शिक्षा दी।

तात्पर्य : जड़ भरत ब्राह्मण शरीर में महाराज भरत थे। वे ऊपर ऊपर ऐसा आचरण कर रहे थे मानो जड़, बहरे, गूँगे तथा अन्धे हों। किन्तु वास्तव में भीतर से वे अत्यन्त जागरूक थे। उन्हें कर्मफल तथा भक्तिफल का पूर्ण ज्ञान था। ब्राह्मण शरीर में महाराज भरत अन्तःकरण से भक्ति में पूरी तरह डूबे

रहते, फलतः उन्हें सकामकर्म के विधि-विधानों के करने की कोई आवश्यकता नहीं थी जैसाकि श्रीमद्भागवत (१.२.१३) में पुष्टि की गई है—स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम्। मनुष्य को भगवान् हरि को प्रसन्न करना चाहिए। सकाम कर्म की यही सिद्धि है। इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवत (१.२.८) में यह भी कहा गया है—

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विश्वक्सेनकथासु यः ।

नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

“वृत्ति का विचार किये बिना मनुष्यों द्वारा किया धर्म वृथा श्रम ही है यदि उससे परमेश्वर के संदेश के प्रति आकर्षण उत्पन्न नहीं होता।” इन कर्मकाण्डों की तभी तक आवश्यकता पड़ती है जब तक कृष्णभक्ति जागृत नहीं होती। यदि कृष्णभक्ति विकसित हो जाये तो फिर इन कर्मकाण्डों को पहले करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। श्रील माधवेन्द्र पुरी ने कहा है, “हे कर्मकाण्ड के विधि-विधान! मुझे क्षमा करो। मैं इनका पालन नहीं कर सकता, क्योंकि मैं भक्ति में पूर्णतः संलग्न हूँ।” वे चाहते थे कि किसी वृक्ष के नीचे बैठकर “हरे कृष्ण महामंत्र” का जप करते रहें। फलतः वे कोई विधि-विधान नहीं करते थे। इसी प्रकार हरिदास ठाकुर एक मुसलमान परिवार में उत्पन्न होने के कारण कर्म-काण्ड पद्धति की शिक्षा शुरू से ही प्राप्त नहीं कर पाये थे, किन्तु वे ईश्वर के पवित्र नाम का निरन्तर जप करते थे। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें नामाचार्य अर्थात् पवित्र नाम के कीर्तन में निपुण आचार्य के नाम से स्वीकार किया। जड़ भरत के रूप में महाराज भरत अपने मन में निरन्तर भक्ति में तल्लीन रहते थे। चूँकि पूर्व के तीन जन्मों में उन्होंने विधि-विधानों का पालन किया था, अतः अब वे उन्हें करने में कोई रुचि नहीं दिखाते थे, यद्यपि उनके ब्राह्मण पिता उनसे ऐसा किये जाने की आशा करते थे।

स चापि तदु ह पितृसन्निधावेवासधीचीनमिव स्म करोति छन्दांस्यध्यापयिष्यन्सह व्याहृतिभिः
सप्रणवशिरस्त्रिपदीं सावित्रीं श्रैष्णवासन्तिकान्मासानधीयानमप्यसमवेतरूपं ग्राहयामास. ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (जड़ भरत); च—भी; अपि—निस्संदेह; तत् उ ह—जो कुछ उसका पिता शिक्षा देता; पितृ-सन्निधौ—अपने पिता की उपस्थिति में, पिता के सामने; एव—ही; असधीचीनम् इव—मानो उसने कुछ नहीं समझा, असत्य; स्म करोति—करता था; छन्दांसि अध्यापयिष्यन्—चातुर्मास में अथवा श्रावण मास से शुरू करके वेद मंत्रों की शिक्षा देने का इच्छुक; सह—साथ-साथ; व्याहृतिभिः—स्वर्गलोक (भूः भुवः स्वः) के नामों का उच्चारण; स-प्रणव-शिरः—ओंकार से प्रारम्भ करके; त्रि-पदीम्—तीन

पदों वाले; सावित्रीम्—गायत्री मंत्र; ग्रैष्म-वासन्तिकान् मासान्—चैत्र से (१५ मई से) प्रारम्भ होने वाले चार मास; अधीयानम् अपि—अध्ययन करते रहने पर भी; असमवेत-रूपम्—अपूर्ण रूप में; ग्राहयाम् आस—जो सिखला दिया, अभ्यास करा दिया।

अपने पिता द्वारा वैदिक ज्ञान की समुचित शिक्षा दिये जाने पर भी जड़ भरत उनके समक्ष मूर्ख (जड़) की भाँति आचरण करते। वे ऐसा आचरण इसलिए करते जिससे उनके पिता यह समझें कि वे शिक्षा के अयोग्य हैं और इस प्रकार उसे आगे शिक्षा देना बन्द कर दें। वे सर्वथा विपरीत आचरण करते। यद्यपि शौच के बाद हाथ धोने को कहा जाता, किन्तु वे उन्हें उसके पहले ही धो लेते। तो भी उनके पिता उन्हें बसन्त तथा ग्रीष्म काल में वैदिक शिक्षा देना चाहते थे। उन्होंने उसे ओंकार तथा व्याहृति के साथ-साथ गायत्री मंत्र सिखाने का यत्न किया, किन्तु चार मास बीत जाने पर भी वे उसे सिखाने में सफल न हो सके।

एवं स्वतनुज आत्मन्यनुरागावेशितचित्तः

शौचाध्ययनव्रतनियमगुर्वनलशुश्रूषणाद्यौपकुर्वाणककर्माण्यनभियुक्तान्यपि समनुशिष्टेन

भाव्यमित्यसदाग्रहः पुत्रमनुशास्य स्वयं तावदनधिगतमनोरथः कालेनाप्रमत्तेन स्वयं गृह एव प्रमत्त

उपसंहतः. ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; स्व—निज; तनु-जे—पुत्र जड़ भरत में; आत्मनि—जिसे वे आत्मवत् मानते थे; अनुराग-आवेशित-चित्तः—अपने पुत्र के प्रेम में अनुरक्त ब्राह्मण; शौच—पवित्रता, स्वच्छता; अध्ययन—वैदिक साहित्य का अध्ययन; व्रत—समस्त व्रतों का पालन; नियम—विधि-विधान; गुरु—गुरु का; अनल—अग्नि का; शुश्रूषण-आदि—सेवा इत्यादि.; औपकुर्वाणक—ब्रह्मचर्य आश्रम के; कर्माणि—समस्त कर्म; अनभियुक्तानि अपि—पुत्र के न चाहने पर भी; समनुशिष्टेन—पूर्णतया शिक्षित होकर; भाव्यम्—हो; इति—इस प्रकार; असत्-आग्रहः—अग्राह्य मूर्खता वाले; पुत्रम्—पुत्र को; अनुशास्य—शिक्षा देकर; स्वयम्—स्वयं; तावत्—उस तरह; अनधिगत-मनोरथः—अपनी आकांक्षाएँ पूरी न होने से; कालेन—काल के प्रभाव से; अप्रमत्तेन—जो भुलकड़ नहीं है; स्वयम्—साक्षात्; गृहे—अपने घर में; एव—निश्चय ही; प्रमत्तः—बुरी तरह से आसक्त; उपसंहतः—मृत्यु हो गई, मर गया।

जड़ भरत का ब्राह्मण पिता अपने पुत्र को अपनी आत्मा तथा हृदय के समान मानता, अतः वह उससे अत्यधिक अनुरक्त था। उसने अपने पुत्र को सुशिक्षित बनाना चाहा और अपने इस असफल प्रयास में उसने अपने पुत्र को ब्रह्मचर्य के विधि-विधान सिखाने प्रारम्भ किये, जिनमें वैदिक अनुष्ठान, शौच, वेदाध्ययन, कर्मकाण्ड, गुरु की सेवा, अग्नि यज्ञ करने की विधि सम्मिलित थे। उसने इस प्रकार से अपने पुत्र को शिक्षा देने का भरसक प्रयत्न किया, किन्तु वह असफल रहा। उसने अपने अन्तःकरण में यह आशा बाँध रखी थी कि उसका पुत्र विद्वान् होगा, किन्तु उसके सारे प्रयत्न निष्फल रहे। प्रत्येक प्राणी की भाँति यह ब्राह्मण भी अपने घर के प्रति आसक्त था और वह यह भूल ही गया था कि एक दिन उसे मरना है। किन्तु मृत्यु कभी भूलती

नहीं। वह उचित समय पर प्रकट हुई और उसे उठा ले गई।

तात्पर्य : जो लोग गृहस्थ जीवन में अत्यधिक आसक्त होते हैं और यह भूल जाते हैं कि भविष्य में मृत्यु आकर उन्हें उठा ले जाएगी वे मानव जीवन का कर्तव्य पूरा नहीं कर पाते। मनुष्य का कर्तव्य है कि जीवन की समस्त समस्याओं को सुलझाए, किन्तु मनुष्य पारिवारिक झमेलों तथा कार्यों में अत्यधिक व्यस्त हुए रहते हैं। वे भले ही मृत्यु को भूले रहें, किन्तु मृत्यु उन्हें नहीं भूलती। वह एकाएक उन्हें शान्त पारिवारिक जीवन से बाहर कर देती है। कोई यह भले भूल जाये कि उसे मरना है, किन्तु मृत्यु को तो यह स्मरण रहता है। मृत्यु अपने समय पर उपस्थित होती है। जड़ भरत का ब्राह्मण पिता पुत्र को ब्रह्मचर्य की विधि बताना चाहता था, किन्तु उसका पुत्र वैदिक प्रगति की प्रक्रिया के लिए तैयार न होने के कारण, पिता सफल न हो सका। जड़ भरत तो *श्रवणं कीर्तनं विष्णोः* के द्वारा भक्ति करते हुए परम धाम लौटने के लिए ही आकुल रहते। उसे अपने पिता के वैदिक उपदेशों की कोई परवाह न थी। जब कोई व्यक्ति ईश्वर की सेवा में पूर्णतया अनुरक्त रहना चाहता है, तो वेदवर्णित सभी विधि-विधानों के पालन में उसकी अभिरुचि नहीं रह जाती। निस्सन्देह, सामान्य व्यक्ति के लिए वैदिक नियम अनिवार्य हैं। कोई उनकी उपेक्षा नहीं कर पाता। किन्तु जिसे भक्ति में सिद्धि प्राप्त हो जाती है, तो उसके लिए वैदिक-नियमों का अनुपालन अनिवार्य नहीं होता। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यह उपदेश दिया कि वह वैदिक नियमों से ऊपर दिव्य स्थिति अर्थात् *निस्त्रैगुण्य* पद तक उठे। *भगवद्गीता* (२.४५) में यह प्रसंग इस प्रकार है—

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।

निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥

“वेद मुख्यतः प्रकृति के तीन गुणों की व्याख्या करते हैं। हे अर्जुन! तू इन गुणों का उल्लंघन करके इनसे ऊपर उठ। सम्पूर्ण द्वन्द्वों तथा योगक्षेम की चिन्ता से मुक्त होकर स्वरूपनिष्ठ बन।”

अथ यवीयसी द्विजसती स्वर्गर्भजातं मिथुनं सपत्न्या उपन्यस्य स्वयमनुसंस्थया पतिलोकमगात् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; यवीयसी—सबसे छोटी; द्विज-सती—ब्राह्मण की पत्नी; स्व-गर्भ-जातम्—अपने गर्भ से उत्पन्न; मिथुनम्—जुड़वाँ बच्चे; सपत्न्यै—अपनी सौत को; उपन्यस्य—सौंप कर; स्वयम्—स्वयं; अनुसंस्थया—अपने पति का अनुगमन करती हुई; पति-लोकम्—पतिलोक को; अगात्—चली गई।

तत्पश्चात् ब्राह्मण की छोटी पत्नी अपने जुड़वाँ बच्चों—एक लड़का तथा एक लड़की—को अपनी बड़ी सौत को सौंप कर अपनी इच्छा से अपने पति के साथ मर कर पतिलोक चली गई।

पितर्युपरते भ्रातर एनमतत्प्रभावविदस्त्रय्यां विद्यायामेव पर्यवसितमतयो न परविद्यायां जडमतिरिति भ्रातुरुशासननिर्बन्धात्र्यवृत्सन्त. ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

पितरि उपरते—पिता की मृत्यु के पश्चात्; भ्रातरः—सौतेले भाइयों ने; एनम्—इस जड़ भरत को; अ-तत्-प्रभाव-विदः—उसकी महानता को समझे बिना; त्रय्याम्—तीनों वेदों के; विद्यायाम्—कर्मकाण्ड सम्बन्धी ज्ञान में; एव—निस्सन्देह; पर्यवसित—स्थिर; मतयः—जिनके मन; न—नहीं; पर-विद्यायाम्—भक्ति के दिव्य ज्ञान में; जड-मतिः—अत्यन्त मन्द बुद्धि; इति—इस प्रकार; भ्रातुः—अपने भाई (जड़ भरत) को; अनुशासन-निर्बन्धात्—पढ़ाने का प्रयत्न; त्र्यवृत्सन्त—छोड़ दिया।

पिता की मृत्यु के बाद जड़ भरत के नौ सौतेले भाइयों ने उसे जड़ तथा बुद्धि-हीन समझकर उसको पूर्ण शिक्षा प्रदान करने के उनके पिता का प्रयत्न छोड़ दिया। जड़ भरत के ये भाई तीनों वेदों—ऋग्वेद, साम यथा यजुर्वेद में पारंगत थे, जो सकाम कर्म को अत्यधिक प्रोत्साहन देते हैं। किन्तु वे नवों भाई ईश्वर की भक्तिमयसेवा से तनिक भी परिचित न थे। फलस्वरूप वे जड़ भरत की सिद्ध अवस्था को नहीं समझ सके।

स च प्राकृतैर्द्विपदपशुभिरुन्मत्तजडबधिरमूकेत्यभिभाष्यमाणो यदा तदनुरूपाणि प्रभाषते कर्माणि च कार्यमाणः परेच्छया करोति विष्टितो वेतनतो वा याच्चया यदृच्छया वोपसादितमल्पं बहु मृष्टं कदन्नं वाभ्यवहरति परं नेन्द्रियप्रीतिनिमित्तम् नित्यनिवृत्तिनिमित्तस्वसिद्धविशुद्धानुभवानन्दस्वात्मलाभाधिगमः सुखदुःखयोर्द्वन्द्वनिमित्तयोरसम्भावितदेहाभिमानः. शीतोष्णावातवर्षेषु वृष इवानावृताङ्गः पीनः संहननाङ्गः स्थण्डिलसंवेशनानुन्मर्दनामज्जनरजसा महामणिरिवानभिव्यक्तब्रह्मवर्चसः कुपटावृतकटिरुपवीतेनोरुमषिणा द्विजातिरिति ब्रह्मबन्धुरिति संज्ञयातञ्जजनावमतो विचचार. ॥ ११० ॥

शब्दार्थ

सः च—वह भी; प्राकृतैः—सामान्य जनों द्वारा जिनकी पहुँच आत्मतत्त्व तक नहीं है; द्वि-पद-पशुभिः—जो दो पैरों वाले पशुओं से कम नहीं है; उन्मत्त—पागल; जड—मन्द; बधिर—बहरा; मूक—गुँगा; इति—इस प्रकार; अभिभाष्यमाणः—सम्बोधित किये जाने पर; यदा—जब; तत्-अनुरूपाणि—उनका उत्तर देने के लिए उपयुक्त शब्द; प्रभाषते—बोलता था; कर्माणि—कर्म; च—भी; कार्यमाणः—कराते हुए; पर-इच्छया—अन्यों की आज्ञा से; करोति—किया करता था; विष्टितः—बल प्रयोग से, बेगार; वेतनतः—अथवा मजदूरी से; वा—अथवा; याच्चया—भीख माँगने से; यदृच्छया—अपनी इच्छानुसार; वा—अथवा; उपसादितम्—प्राप्त; अल्पम्—अत्यल्प मात्रा; बहु—बहुत सा; मृष्टम्—सुखादुःख; कत्-अन्नम्—बासी, स्वादहीन भोजन; वा—अथवा; अभ्यवहरति—खा लेता था; परम्—केवल; न—नहीं; इन्द्रिय-प्रीति-निमित्तम्—इन्द्रियों की तृप्ति हेतु; नित्य—शाश्वत; निवृत्त—त्याग दिया; निमित्त—सकाम कर्म; स्व-सिद्ध—स्वतः सिद्ध; विशुद्ध—दिव्य; अनुभव-आनन्द—आनन्दपूर्ण अनुभव; स्व-आत्म-लाभ-अधिगमः—जिसे आत्मज्ञान प्राप्त हो गया हो; सुख-दुःखयोः—सुख तथा दुःख दोनों में; द्वन्द्व-निमित्तयोः—द्वैत के कारणों में; असम्भावित-देह-अभिमानः—देह से भिन्न; शीत—जाड़े में; उष्ण—ग्रीष्म में; वात—हवा में; वर्षेषु—वर्षा में; वृषः—साँड़; इव—सदृश; अनावृत-अङ्गः—नंगी देह; पीनः—हृष्ट-पुष्ट; संहनन-अङ्गः—गठित अंग; स्थण्डिल-संवेशन—पृथ्वी पर पड़े रहने से; अनुन्मर्दन—बिना मालिश के; अमज्जन—बिना नहाये; रजसा—धूलि से; महा-मणिः—बहुमूल्य मणि; इव—सदृश; अनभिव्यक्त—अप्रकट; ब्रह्म-वर्चसः—ब्रह्म-तेज; कु-पट-आवृत—गन्दे वस्त्र से ढका; कटिः—जिसकी कमर;

उपवीतेन—यज्ञोपवीत से; उरु-मषिणा—धूल के कारण अत्यन्त मलिन (काला); द्वि-जाति:—ब्राह्मण कुल में उत्पन्न; इति—इस प्रकार, (घृणा के कारण कहते हुए); ब्रह्म-बन्धु:—ब्रह्म बन्धु; इति—इस प्रकार; संज्ञया—ऐसे नामों से; अ-तत्-ज्ञ-जन—उन व्यक्तियों द्वारा जो उसकी स्थिति से अपरिचित थे; अवमत:—अनाहत होकर; विचचार—विचरण करता था।

नीच पुरुष पशुओं के तुल्य होते हैं। अन्तर इतना ही है कि पशुओं के चार पैर होते हैं और ऐसे मनुष्यों के केवल दो। ऐसे दो पैर वाले पाशविक पुरुष जड़ भरत को पागल, मन्द बुद्धि, बहुरा तथा गूंगा कहते थे। वे उसके साथ दुर्व्यवहार करते और जड़ भरत बहुरे, अंधे या जड़ पागल की भाँति आचरण करता। न तो वह कभी प्रतिवाद करता, न ही उन्हें आश्रय करने का प्रयत्न करता कि वह ऐसा नहीं है। यदि कोई उससे कुछ कराना चाहता तो वह उनकी इच्छा के अनुसार कार्य करता। उसे भिक्षा या मजदूरी से अथवा अपने आप जो भी भोजन मिलता—चाहे वह थोड़ा हो, स्वादु, बासी या अस्वादु—उसे ग्रहण करता और खाता। वह इन्द्रिय-तृप्ति के लिए कभी कुछ नहीं खाता था, क्योंकि वह पहले से उस देहात्म-बुद्धि से मुक्त हो गया था, जिसके वशीभूत होकर स्वादिष्ट या बेस्वाद भोजन किया जाता है। वह भक्ति की दिव्य भावना से पूर्ण था, फलतः देहात्म-बुद्धि से उठने वाले द्वन्द्वों से सर्वथा अप्रभावित रहता था। वास्तव में उसका शरीर साँड़ के समान बलिष्ठ था और उसके अंग-प्रत्यंग हृष्ट-पुष्ट थे। उसे न तो सर्दी-गर्मी या बयार-वर्षा की परवाह थी और न ही कभी वह अपने शरीर को ढकता था। वह जमीन पर लेटा रहता। वह अपने शरीर में न तो कभी तेल लगाता, न ही कभी स्नान करता था। शरीर मलिन होने के कारण उसका ब्रह्मतेज तथा ज्ञान उसी प्रकार ढके हुए थे जिस प्रकार धूल जमने से किसी मूल्यवान मणि का तेज छिप जाता है। उसने केवल एक गन्दा कौपीन और एक यज्ञोपवीत पहन रखा था जो काला पड़ गया था। यह जानते हुए भी कि वह ब्राह्मण कुल में उत्पन्न है, लोग उसे ब्रह्मबन्धु तथा अन्य नामों से पुकारते थे। इस प्रकार भौतिकतावादी लोगों द्वारा अपमानित एवं उपेक्षित होकर वह इधर-उधर घूमता रहता था।

तात्पर्य : श्रील नरोत्तमदास ठाकुर का गीत है—*देह-स्मृति नाहि यार, संसारबंधन काहाँ तार।* जिसे अपने शरीर-पालन की इच्छा न रहे, अथवा जो अपने शरीर को ढंग से रखने का इच्छुक न हो और जो किसी भी परिस्थिति में संतुष्ट रहे वह या तो पागल होगा या फिर मुक्त। वास्तव में जड़भरत के रूप में जन्म लेकर भरत महाराज भौतिक द्वन्द्वों से सर्वथा मुक्त थे। वे परमहंस थे, अतः उन्हें शारीरिक सुख की

चिन्ता न थी ।

यदा तु परत आहारं कर्मवेतनत ईहमानः स्वभ्रातृभिरपि केदारकर्मणि निरूपितस्तदपि करोति किन्तु न समं विषमं न्यूनमधिकमिति वेद

कणपिण्याकफलीकरणकुल्माषस्थालीपुरीषादीन्यप्यमृतवदभ्यवहरति ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; तु—लेकिन; परतः—अन्यों से; आहारम्—भोजन; कर्म-वेतनतः—काम करने के बदले मजदूरी; ईहमानः—पालते देखकर; स्व-भ्रातृभिः अपि—अपने सौतेले भाइयों तक से; केदार-कर्मणि—खेत में काम करने तथा कृषिकार्य देखने में; निरूपितः—लगा हुआ; तत् अपि—उस समय भी; करोति—वह करता था; किन्तु—लेकिन; न—नहीं; समम्—समतल; विषमम्—विषम, ऊबड़-खाबड़; न्यूनम्—कम; अधिकम्—अधिक उठी हुई; इति—इस प्रकार; वेद—जानता था; कण—धान के टूटे दाने, कना; पिण्याक—खली; फली-करण—धान की भूसी; कुल्माष—घुन-लगा अन्न; स्थाली-पुरीष-आदीनि—बर्तन में लगा जला चावल आदि; अपि—भी; अमृत-वत्—अमृत के समान; अभ्यवहरति—खा लेता था ।

जड़ भरत केवल भोजन के लिए काम करता था। उसके सौतेले भाइयों ने इसका लाभ उठाकर उसे कुछ भोजन के बदले खेत में काम करने में लगा दिया, किन्तु उसे खेत में ठीक से काम करने की विधि ज्ञात न थी। उसे यह ज्ञात न था कि कहाँ मिट्टी डाली जाये अथवा कहाँ भूमि को समतल या ऊँचा-नीचा रखा जाये। उसके भाई उसे टूटे चावल (कना), खली, धान की भूसी, घुना अनाज तथा रसोई के बर्तनों की जली हुई खुरचन दिया करते थे, किन्तु वह इन सबको प्रसन्नतापूर्वक अमृत के समान स्वीकार कर लेता था। उसे किसी प्रकार की शिकायत न रहती और वह इन सब चीजों को प्रसन्नतापूर्वक खा लेता था।

तात्पर्य : भगवद्गीता (२.१५) में परमहंस पद का वर्णन इस प्रकार हुआ है— समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते। जब किसी मनुष्य को इस संसार के सुख-दुख नहीं व्यापते तो वह अमृतत्व अर्थात् शाश्वत जीवन के योग्य होता है। भरत महाराज इस संसार में अपने कार्य को समाप्त करने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ थे, अतः उन्होंने संसार के द्वैत की तनिक भी परवाह नहीं की। वे कृष्णभावनामृत में पूर्ण थे और अच्छे-बुरे तथा सुख-दुख के प्रति विरक्त थे। जैसाकि चैतन्यचरितामृत (अन्त्य ४.१७६) में कहा गया है—

‘द्वैते’ भद्राभद्र-ज्ञान सब-‘मनोधर्म’।

एइ भाल, एइ मन्द, ’—सब ‘भ्रम’।

“इस संसार में अच्छे तथा बुरे का विचार मानसिक कल्पना है। अतः यह कहना कि ‘यह अच्छा

है और यह बुरा है', सारी की सारी एक भूल है।" मनुष्य को यह समझना चाहिए कि इस द्वैत-भाव के संसार में यह सोचना कि यह अच्छा है, अथवा यह बुरा है मात्र मनगढ़ंत कल्पना है। फिर भी किसी को इस भावना का अनुकरण न करके समभाव की स्थिति प्राप्त करनी चाहिए।

अथ कदाचित्कश्चिद्वृषलपतिर्भद्रकाल्यै पुरुषपशुमालभतापत्यकामः. ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; कदाचित्—किसी समय; कश्चित्—कोई; वृषल-पतिः—अन्यों की सम्पत्ति लूटने वाले शूद्रों का सरदार; भद्र-काल्यै—भद्रकाली नामक देवी को; पुरुष-पशुम्—मनुष्य के रूप में पशु की; आलभत—बलि देने लगा; अपत्य-कामः—पुत्र का इच्छुक।

इसी समय, पुत्र की कामना से, डाकुओं का एक सरदार जो शूद्र कुल का था, किसी पशु-तुल्य जड़ मनुष्य की भद्रकाली पर बलि चढ़ाकर उपासना करना चाहता था।

तात्पर्य : निम्न श्रेणी के लोग, यथा शूद्र, अपनी भौतिक कामनाओं की पूर्ति के लिए देवी काली या भद्रकाली जैसी देवियों की उपासना करते हैं। इस उद्देश्य से वे कभी-कभी मूर्ति (अर्चाविग्रह) के समक्ष मनुष्य का वध करते हैं। वे सामान्य रूप से ऐसा व्यक्ति चुनते हैं, जो मन्द बुद्धि हो अर्थात् मनुष्य के रूप में पशु हो।

तस्य ह दैवमुक्तस्य पशोः पदवीं तदनुचराः परिधावन्तो निशि निशीथसमये तमसावृतायामनधिगतपशव आकस्मिकेन विधिना केदारान्वीरासनेन मृगवराहादिभ्यः संरक्षमाणमङ्गिरःप्रवरसुतमपश्यन्. ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उस सरदार का; ह—निश्चय ही; दैव-मुक्तस्य—संयोग्यवश बच जाने से; पशोः—नर-पशु का; पदवीम्—मार्ग; तत्-अनुचराः—उसके अनुयायी; परिधावन्तः—इधर-उधर ढूँढने के लिए दौड़ते हुए; निशि—रात्रि में; निशीथ-समये—अर्द्धरात्रि में; तमसा आवृतायाम्—अंधेरे से ढका हुआ; अनधिगत-पशवः—नर-पशु न पकड़ सकने से; आकस्मिकेन विधिना—दैवयोग से अकस्मात्; केदारान्—खेतों में; वीर-आसनेन—ऊँचे स्थान पर बने आसन से; मृग-वराह-आदिभ्यः—मृग, जंगली सुअर आदि से; संरक्षमाणम्—रक्षा करता हुआ; अङ्गिरः-प्रवर-सुतम्—अंगिरा गोत्र वाले ब्राह्मण पुत्र को; अपश्यन्—देखा।

डाकुओं के सरदार ने बलि के लिए एक नर-पशु पकड़ा, किन्तु वह बचकर निकल भागा और सरदार ने अपने सेवकों को उसे ढूँढने के लिए आज्ञा दी। वे विभिन्न दिशाओं में दौड़े किन्तु उसे ढूँढ न सके। अर्द्धरात्रि के गहन अंधकार में इधर-उधर घूमते हुए, वे एक धान के खेत में पहुँचे जहाँ उन्होंने अंगिरा वंश के एक ब्राह्मणकुमार (जड़भरत) को देखा जो एक ऊँचे स्थान पर बैठ कर मृग तथा जंगली सुअरों से खेत की रखवाली कर रहा था।

अथ त एनमनवद्यलक्षणमवमृश्य भर्तृकर्मनिष्पत्तिं मन्यमाना बद्ध्वा रशनया चण्डिकागृहमुपनिन्युर्मुदा विकसितवदनाः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; ते—वे (सरदार के सेवक); एनम्—इस (जड़ भरत); अनवद्य-लक्षणम्—मन्द पशु के से लक्षणों वाला क्योंकि उसका शरीर साँड़ जैसा मोटा था और वह बहरा तथा गूंगा था; अवमृश्य—पहचान कर; भर्तृ-कर्म-निष्पत्तिम्—अपने स्वामी के कार्य की सिद्धि; मन्यमानाः—मानते हुए, समझकर; बद्ध्वा—बाँधकर; रशनया—रस्सियों से; चण्डिका-गृहम्—देवी काली के मन्दिर में; उपनिन्युः—ले आये; मुदा—परम प्रसन्नतापूर्वक; विकसित-वदनाः—प्रसन्नमुख ।

डाकू सरदार के सेवकों तथा अनुचरों ने नर-पशु के लक्षणों से युक्त जड़ भरत को अत्यन्त उपयुक्त समझ कर उसे बलि के लिए अत्युत्तम पाया। अतः प्रसन्नता के मारे उनके मुख चमकने लगे, उन्होंने उसे रस्सियों से बाँध लिया और देवी काली के मन्दिर में ले आये।

तात्पर्य : भारत के कुछ भागों में आज भी देवी काली के समक्ष पशु-तुल्य मनुष्यों की बलि चढ़ाई जाती है। तो भी ऐसी बलि केवल शूद्रों तथा डाकूओं द्वारा चढ़ाई जाती है। उनका कार्य धनी व्यक्ति को लूटना है और इसमें सफल होने के लिए वे देवी काली के समक्ष नर-पशु की बलि देते हैं। यह ध्यान देने की बात है कि वे देवी पर कभी भी किसी बुद्धिमान मनुष्य की बलि नहीं देते। ब्राह्मण शरीर में भरत महाराज गूंगे तथा बहरे प्रतीत होते थे, किन्तु तो भी वे संसार के सर्वाधिक बुद्धिमान पुरुष थे। इतने पर भी, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रति सर्वथा समर्पित होने के कारण वे उसी स्थिति में बने रहे और वध के लिए लाये जाने पर उन्होंने किसी प्रकार का विरोध नहीं किया। जैसाकि पिछले श्लोकों से हमें ज्ञात है, वे इतने बली थे कि चाहते तो रस्सियों से बाँधे जाने से अपने को आसानी से बचा लेते, किन्तु उन्होंने कुछ भी नहीं किया। वे अपनी रक्षा के लिए भगवान् पर पूरी तरह आश्रित थे। श्रील भक्ति विनोद ठाकुर परमेश्वर के प्रति समर्पण का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

मारबि राखबि—यो इच्छा तोहारा

नित्य-दास-प्रति तुया अधिकारा

“हे ईश्वर! मैंने आपको आत्मसमर्पण कर दिया है। मैं आपका शाश्वत सेवक हूँ और यदि आप चाहें तो मुझे मारें या मेरी रक्षा करें। प्रत्येक दशा में मुझ पर आपका अधिकार है।”

अथ पणयस्तं स्वविधिनाभिषिच्याहतेन वाससाच्छाद्य भूषणालेपस्त्रक्तिलकादिभिरुपस्कृतं भुक्तवन्तं धूपदीपमाल्यलाजकिसलयान्द्रु रफलोपहारोपेतया वैशससंस्थया महता गीतस्तुतिमृदङ्गपणवघोषेण च पुरुषपशुं भद्रकाल्याः पुरत उपवेशयामासुः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

अथ—तदनन्तर; पणयः—डाकू के समस्त अनुचरों ने; तम्—उसको (जड़ भरत को); स्व-विधिना—अपने विधि-विधानों के अनुसार; अभिषिच्य—नहलाकर; अहतेन—नये; वाससा—वस्त्र से; आच्छाद्य—ढक कर; भूषण—गहने; आलेप—चन्दन से लेपकर; स्रक्—पुष्प माला; तिलक-आदिभिः—तिलक आदि से; उपस्कृतम्—पूर्णतया सजाकर; भुक्तवन्तम्—भोजन करा कर; धूप—सुगन्धित द्रव्य; दीप—दीपक; माल्य—माला; लाज—लावा; किसलय-अङ्कुर—नये पत्ते तथा अंकुर; फल—फल; उपहार—अन्य सामग्री; उपेतया—पूर्णतया सज्जित; वैशस-संस्थया—बलि के लिए पूरी तैयारी; महता—अत्यधिक; गीत-स्तुति—गाना तथा प्रार्थना का; मृदङ्ग—मृदंग; पणव—तुरही की; घोषेण—ध्वनि से; च—भी; पुरुष-पशुम्—नर-पशु को; भद्र-काल्याः—देवी काली के; पुरतः—ठीक सामने; उपवेशयाम् आसुः—बैठा दिया।

इसके पश्चात् चोरों ने नर-पशु बलि की काल्पनिक पद्धति के अनुसार जड़ भरत को नहलाया, नये वस्त्र पहनाए, पशु के अनुकूल आभूषणों से अलंकृत किया, उसके शरीर पर सुगन्धित लेप किया तथा तिलक, चन्दन एवं हार से सुसज्जित किया। उसे अच्छी तरह भोजन कराने के बाद वे उसे देवी काली के समक्ष ले आये और देवी को धूप, दीप, माला, खील, पत्ते, अंकुर, फल तथा फूल की भेंट चढ़ाई। इस प्रकार उन्होंने नर-पशु का वध करने के पूर्व गीत, स्तुति द्वारा एवं मृदंग तथा तुरही आदि बजाकर देवी की पूजा की। इसके पश्चात् जड़ भरत को मूर्ति के समक्ष बैठा दिया।

तात्पर्य : इस श्लोक में *स्वविधिना* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वैदिक शास्त्रों के अनुसार कोई भी कृत्य विधि-विधानों के अनुसार किया जाता है, किन्तु यहाँ पर यह कहा गया है कि चोरों तथा उचक्यों ने नर-पशु को मारने की अपनी विधि निकाली थी। तामसी शास्त्रों में देवी काली के समक्ष बकरे या भैंसे की बलि देने का विधान है, किन्तु उसमें मनुष्य की बलि का, चाहे वह कितना ही मूर्ख क्यों न हो, कोई उल्लेख नहीं है। यह विधान डाकूओं द्वारा स्वयं कल्पित किया गया था, इसलिए *स्व-विधिना* शब्द प्रयुक्त हुआ है। आज भी अनेक यज्ञ वैदिक शास्त्रों का उल्लेख किये बिना किये जाते हैं। उदाहरणार्थ, हाल ही में कलकत्ता में एक बूचड़खाने का विज्ञापन देवी काली के मन्दिर के रूप में किया गया। मांस खाने वाले लोग मूर्खता से ऐसी दूकानों से यह सोच कर माँस खरीदते हैं कि यह सामान्य मांस से भिन्न है और देवी काली का प्रसाद है। देवी काली के समक्ष बकरे या इसी प्रकार के पशु की बलि का उल्लेख शास्त्रों में इस दृष्टि से हुआ है कि लोग बूचड़खानों से मांस न खरीदें और इस प्रकार पशुओं के वध के लिए उत्तरदायी न हों। बद्धजीवों में मांस खाने तथा संभोग करने की सहज प्रवृत्ति होती है, फलतः शास्त्र उन्हें कुछ छूट देते हैं। वास्तव में शास्त्रों का उद्देश्य ऐसी जघन्य प्रवृत्तियों को रोकना है, किन्तु साथ ही वे उनके लिए कुछ विधि-विधान भी प्रदान करते हैं। जिससे

मांसाहारी तथा यौनाचारी क्रमशः सुधर जायें ।

अथ वृषलराजपणिः पुरुषपशोरसृगासवेन देवीं भद्रकालीं
यक्ष्यमाणस्तदभिमन्त्रितमसिमतिकरालनिशितमुपाददे. ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

अथ—तदनन्तर; वृषल-राज-पणिः—डाकुओं के सरदार का पुरोहित; पुरुष-पशोः—बलि के लिए लाये गये पशु तुल्य नर (जड़ भरत) का; असृक्-आसवेन—रक्त के आसव से; देवीम्—अर्चाविग्रह को; भद्र-कालीम्—देवी काली; यक्ष्यमाणः—बलि देने का इच्छुक; तत्-अभिमन्त्रितम्—भद्रकाली के मंत्र से पवित्र की गयी; असिम—तलवार, खड्ग; अति-कराल—अत्यन्त भयानक; निशितम्—अत्यन्त पैनी; उपाददे—हाथ में ली ।

उस समय, पुरोहित के रूप में कार्य कर रहा एक चोर भद्रकाली को पीने के लिए नर-पशु जड़-भरत का रक्त-आसव चढ़ाने के लिए तत्पर था। अतः उसने अत्यन्त भयावनी तथा पैनी तलवार निकाली और भद्रकाली के मंत्र से अभि मन्त्रित करके जड़ भरत को मारने के लिए उसे उठाया ।

इति तेषां वृषलानां रजस्तमःप्रकृतीनां धनमदरजउत्सिक्तमनसां भगवत्कलावीरकुलं कदर्थीकृत्योत्पथेन
स्वैरं विहरतां हिंसाविहाराणां कर्मातिदारुणं यद्ब्रह्मभूतस्य साक्षाद्ब्रह्मर्षिसुतस्य निर्वैरस्य सर्वभूतसुहृदः
सूनायामप्यननुमतमालम्भनं तदुपलभ्य ब्रह्मतेजसातिदुर्विषहेण दन्दह्यमानेन वपुषा सहसोच्चचाट सैव
देवी भद्रकाली. ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; तेषाम्—उन; वृषलानाम्—शूद्रों का जिनसे समस्त धार्मिक नियम नष्ट होते हैं; रजः—रजोगुण; तमः—तमोगुण; प्रकृतीनाम्—गुणों वाले; धन-मद—सम्पत्ति के कारण उत्पन्न गर्व; रजः—काम द्वारा; उत्सिक्त—फूला हुआ, उन्मत्त; मनसाम्—जिनके मन; भगवत्-कला—श्रीभगवान् के अंश का विस्तार, अंशस्वरूप; वीर-कुलम्—महान् पुरुषों (ब्राह्मणों) का कुल (समूह); कत्-अर्थी-कृत्य—अनादर करके; उत्पथेन—कुमार्ग से; स्वैरम्—स्वेच्छा से; विहरताम्—आगे बढ़ रहे; हिंसा-विहाराणाम्—जिनका कार्य अन्यो पर हिंसा करना है; कर्म—कर्म, कार्य; अति-दारुणम्—अत्यन्त भयावह; यत्—जो; ब्रह्म-भूतस्य—ब्राह्मण कुल में उत्पन्न स्वरूपसिद्ध व्यक्ति; साक्षात्—प्रत्यक्ष; ब्रह्म-ऋषि-सुतस्य—ब्रह्म-ऋषि के पुत्र का; निर्वैरस्य—वैरविहीन का; सर्व-भूत-सुहृदः—सबों का शुभचिन्तक; सूनायाम्—अन्तिम क्षण में; अपि—यद्यपि; अननुमतम्—अविहित; आलम्भनम्—ईश्वर की इच्छा के विपरीत; तत्—वह; उपलभ्य—देखकर; ब्रह्म-तेजसा—दिव्य आनन्द के तेज से; अति-दुर्विषहेण—अत्यन्त प्रखर अतः असह्य; दन्दह्यमानेन—ज्वलित; वपुषा—शरीर से; सहसा—एकाएक; उच्चचाट—मूर्ति को विदीर्ण करके; सा—वह (देवी); एव—निस्संदेह; देवी—देवी; भद्र-काली—भद्रकाली ।

जिन चोर-उचक्यों ने देवी काली के पूजन का प्रबन्ध कर रखा था वे अत्यन्त नीच थे और रजो तथा तमो गुणों से आबद्ध थे। वे धनवान बनने की कामना से ओतप्रोत थे, अतः उन्होंने वेदों के आदेशों का तिरस्कार किया। यहाँ तक कि वे ब्राह्मण कुल में उत्पन्न स्वरूपसिद्ध जीवात्मा जड़ भरत का वध करने के लिए उद्यत थे। द्वेषवश वे उन्हें देवी काली के समक्ष बलि चढ़ाने के लिए लाये थे। ऐसे व्यक्ति सदैव ईर्ष्यालु कार्यों में रत रहते हैं, इसीलिए वे जड़ भरत

को मारने का दुस्साहस कर सके। जड़ भरत समस्त जीवों के परम मित्र थे। वे किसी के भी शत्रु न थे और सदैव पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के ध्यान में मग्न रहते थे। उनका जन्म उत्तम ब्राह्मण कुल में हुआ था, अतः यदि वे किसी के शत्रु होते अथवा आक्रामक होते तो भी उनका वध वर्जित था। किसी भी दशा में जड़ भरत को वध किये जाने का कोई औचित्य न था, अतः यह भद्रकाली से सहन नहीं हो सका। वे तुरन्त समझ गई कि ये पापी डाकू ईश्वर के एक परम भक्त का वध करने वाले हैं। अतः सहसा मूर्ति का शरीर विदीर्ण हो गया और साक्षात् देवी काली प्रकट हुई। उनका शरीर प्रखर एवं असह्य तेज से जल रहा था।

तात्पर्य : वैदिक आदेशानुसार केवल आक्रामक का वध किया जा सकता है। यदि कोई मारने के उद्देश्य से आए तो आत्मरक्षा हेतु उसका तुरन्त वध किया जा सकता है। यह भी कहा गया है कि यदि कोई घर में आग लगाने या किसी की स्त्री को अपवित्र करने या हरने के उद्देश्य से आए तो उसका वध किया जा सकता है। भगवान् रामचन्द्र ने रावण के समस्त परिवार का वध कर दिया, क्योंकि रावण ने उनकी पत्नी सीता देवी का अपहरण किया था। किन्तु शास्त्रों में अन्य किसी कार्य के लिए वध की आज्ञा नहीं है। देवताओं पर जो भगवान् के विस्तार हैं, पशुओं की बलि की अनुमति उन लोगों को है जो मांस खाते हैं। मांसाहार पर यह एक प्रकार का प्रतिबन्ध है। दूसरे शब्दों में, वेदों में कुछ नियमों के द्वारा पशुओं के वध पर भी प्रतिबन्ध है। इन बातों पर विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि उच्च ब्राह्मण कुल में उत्पन्न जड़ भरत को मारने का कोई औचित्य नहीं था। वे स्वरूपसिद्ध थे और सभी जीवों के शुभचिन्तक थे। वेदों के अनुसार चोर-उचक्यों द्वारा जड़ भरत के वध किये जाने की स्वीकृति नहीं प्राप्त होती। फलतः देवी भद्रकाली ईश्वर के भक्त की रक्षा हेतु मूर्ति में से प्रकट हुई। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इस प्रकार व्याख्या करते हैं कि जड़ भरत का ब्रह्म तेज ऐसा था कि मूर्ति विदीर्ण हो गई। रजो तथा तमोगुणी चोर-उचक्ये तथा ऐश्वर्य से प्रमत्त व्यक्ति ही देवी काली के समक्ष मनुष्य की बलि करते हैं। वेदों द्वारा इसकी अनुमति नहीं है। इस समय पूरे विश्व में हजारों कसाईघर हैं, जो ऐश्वर्य के पीछे दीवाने लोगों द्वारा संचालित किये जाते हैं। भागवत सम्प्रदाय द्वारा ऐसे कृत्यों का कभी भी अनुमोदन नहीं होता।

भृशममर्षरोषावेशरभसविलसितभुकुटिविटपकुटिलदंष्ट्रारुणेक्षणाटोपातिभयानकवदना हन्तुकामेवेदं
महादृहासमतिसंरम्भेण विमुञ्चन्ती तत उत्पत्य पापीयसां दुष्टानां तेनैवासिना विवृक्वणशीर्ष्णां
गलात्स्त्रवन्तमसृगासवमत्युष्णां सह गणेन निपीयातिपानमदविह्वलोच्चैस्तरां स्वपार्षदैः सह जगौ ननर्त च
विजहार च शिरःकन्दुकलीलया. ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

भृशम्—अत्यधिक; अमर्ष—पापों के कारण अत्यन्त असहनशीलता; रोष—क्रोध; आवेश—डूबे रहने से; रभस-विलसित—
चढ़ी हुई; भु-कुटि—भौंहें; विटप—शाखाएँ; कुटिल—टेढ़ी; दंष्ट्र—बड़े दाँत (दाढ़ें); अरुण-ईक्षण—लाल लाल नेत्र;
आटोप—विक्षोभ से; अति—अत्यधिक; भयानक—डरावना; वदना—मुख वाली; हन्तु-कामा—संहार करने की इच्छुक;
इव—मानो; इदम्—यह ब्रह्माण्ड; महा-अट्ट-हासम्—अत्यन्त डरावनी हँसी; अति—अत्यधिक; संरम्भेण—क्रोध के कारण;
विमुञ्चन्ती—छोड़ती हुई; ततः—उस बलि वेदी से; उत्पत्य—उछल कर; पापीयसाम्—समस्त पापी; दुष्टानाम्—दुष्टों का; तेन
एव असिना—उसी तलवार से; विवृक्वण—छिन्न; शीर्ष्णाम्—सिर; गलात्—गर्दन से; स्त्रवन्तम्—बहते हुए; असृक्-आसवम्—
रक्त रूपी मादक द्रव (आसव); अति-उष्णम्—अत्यन्त गरम; सह—समेत; गणेन—अपने गणों के; निपीय—पीते हुए; अति-
पान—अत्यधिक पीने से; मद—नशे के; विह्वला—वश में आये हुए; उच्चैः-तराम्—अत्यन्त उच्च स्वर से; स्व-पार्षदैः—अपने
गणों के; सह—साथ; जगौ—गाया; ननर्त—नाचा; च—भी; विजहार—खेल किया; च—भी; शिरः-कन्दुक—सिरों को गेंद
के समान प्रयुक्त करते हुए; लीलया—खेल में।

किए गये अत्याचारों को न सहन कर सकने के कारण क्रुद्ध देवी काली ने अपनी आँखें
चमकायी और उनके कराल वक्र दाँत (दाढ़ें) दिखाए। उनकी लाल-लाल आँखें दहकने लगीं
और उनकी आकृति डरावनी हो गई। उन्होंने अत्यन्त भयावना रूप धारण कर लिया मानो समस्त
सृष्टि का संहार करने को उद्यत हों। वे बलिवेदी से तेजी से कूदीं और तुरन्त ही उन चोर-उचक्यों
के सिर उसी तलवार से काट लिये जिससे वे जड़ भरत का वध करने जा रहे थे। फिर छिन्न सिरों
वाले उन उच्चकों-चोरों के गले से निकलने वाले तप्त रक्त को पीने लगीं मानो मदिरा (आसव)
पान कर रही हों। दरअसल उन्होंने अपने गणों के सहित, जिनमें डाइनें तथा चुड़ैलें थीं, उस
आसव का पान किया और फिर प्रमत्त होकर वे सब उच्च स्वर से गाने तथा नाचने लगीं मानो
समस्त ब्रह्माण्ड का संहार कर डालेंगी। उसी समय वे उनके सिरों को गेंद के समान उछाल-
उछाल कर खेलने लगीं।

तात्पर्य : इस श्लोक से स्पष्ट है कि देवी काली अपने सभी भक्तों का पक्ष नहीं लेतीं। देवी काली
का कार्य ही असुरों को दण्ड देना और उनका वध करना है। देवी काली (दुर्गा) अनेक असुरों,
डाकुओं तथा समाज के बुरे तत्त्वों का शिरोच्छेद करने में लगी रहती हैं। मूर्ख लोग कृष्णभावनामृत की
उपेक्षा करके देवी को प्रसन्न करने के लिए निकृष्ट वस्तुएँ भेंट चढ़ाते हैं, किन्तु अन्त में पूजा में थोड़ी
सी भी त्रुटि रह जाने पर वे इन उपासकों के प्राण लेकर उन्हें दण्डित करती हैं। आसुरी लोग भौतिक
लाभ के लिए देवी काली की उपासना करते तो हैं, किन्तु पूजा के नाम पर किये गये पापों के लिए

उन्हें क्षमा नहीं किया जाता। मूर्ति पर मनुष्य या पशु की बलि विशेष रूप से वर्जित है।

एवमेव खलु महदभिचारातिक्रमः कात्स्न्येनात्मने फलति ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

एवम् एव—इस प्रकार; खलु—निस्संदेह; महत्—महापुरुषों के साथ; अभिचार—ईर्ष्या के रूप में; अति-क्रमः—अपराध की सीमा; कात्स्न्येन—सदैव; आत्मने—अपने ही ऊपर; फलति—प्रतिफलित होता है, पड़ता है।

जब कोई ईर्ष्यालु व्यक्ति किसी महापुरुष के समक्ष कोई अपराध करता है, तो उसे सदैव उपर्युक्त विधि से दंडित होना पड़ता है।

न वा एतद्विष्णुदत्त महदद्भुतं यदसम्भ्रमः स्वशिरश्छेदन आपतितेऽपि
विमुक्तदेहाद्यात्मभावसुदृढहृदयग्रन्थीनां सर्वसत्त्वसुहृदात्मनां निर्वैराणां
साक्षाद्भगवतानिमिषारिवरायुधेनाप्रमत्तेन तैस्तैर्भावैः परिरक्ष्यमाणानां तत्पादमूलमकुतश्चिद्भयमुपसृतानां
भागवतपरमहंसानाम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; वा—अथवा; एतत्—यह; विष्णु-दत्त—हे भगवान् विष्णु द्वारा रक्षित, महाराज परीक्षित; महत्—महान; अद्भुतम्—आश्चर्य; यत्—जो; असम्भ्रमः—व्याकुलता का अभाव; स्व-शिरः-छेदने—अपना सिर काटे जाते समय; आपतिते—आ पड़ने पर; अपि—यद्यपि; विमुक्त—पूर्णतया मुक्त; देह-आदि-आत्म-भाव—जीवन का मिथ्या देहात्म भाव; सु-दृढ—सुदृढ़; हृदय-ग्रन्थीनाम्—हृदय-ग्रन्थि वालों का; सर्व-सत्त्व-सुहृत्-आत्मनाम्—अपने मन में सबों का कल्याण चाहने वाले व्यक्तियों का; निर्वैराणाम्—जिनके एक भी शत्रु नहीं हैं, उनका; साक्षात्—प्रत्यक्ष; भगवता—श्रीभगवान् द्वारा; अनिमिष—तत्काल; अरि-वर—शत्रुओं में श्रेष्ठ सुदर्शन चक्र; आयुधेन—आयुधधारी द्वारा; अप्रमत्तेन—कभी क्षुब्ध न होने वाला; तैः तैः—उन उन; भावैः—श्रीभगवान् के रूपों से; परिरक्ष्यमाणानाम्—रक्षित पुरुषों का; तत्-पाद-मूलम्—श्रीभगवान् के चरणकमल में; अकुतश्चित्—कहीं से भी नहीं; भयम्—डर, भय; उपसृतानाम्—शरणागतों का; भागवत—ईश्वर के भक्तों का; परम-हंसानाम्—परमहंसों का, मुक्त पुरुषों का।

तब शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित से कहा—हे विष्णुदत्त, आत्मा को शरीर से पृथक् मानने वाले, अजेय हृदय-ग्रन्थि से मुक्त, समस्त जीवों के कल्याण कार्य में निरन्तर अनुरक्त तथा दूसरों का अहित न सोचने वाले व्यक्ति चक्रधारी तथा असुरों के लिए परम काल एवं भक्तों के रक्षक श्रीभगवान् द्वारा सदैव संरक्षित होते हैं। भक्त सदैव भगवान् के चरणकमल की शरण ग्रहण करते हैं। फलतः सिर कटने का अवसर आने पर भी वे सदैव अक्षुब्ध रहते हैं। यह उनके लिए तनिक भी विस्मयकारी नहीं होता है।

तात्पर्य : भगवान् के शुद्ध भक्त के ये कुछ महान् गुण हैं। पहले तो भक्त अपनी आध्यात्मिक पहचान के प्रति आश्वस्त होता है। वह अपने को शरीर नहीं मानता, उसे दृढ़ विश्वास हो जाता है कि उसकी आत्मा देह से भिन्न है। फलतः उसे किसी का भय नहीं रह जाता। यहाँ तक कि जीवन का

संकट उत्पन्न होने पर भी वह भयभीत नहीं होता। वह शत्रु को भी शत्रु नहीं मानता। भक्तों के ऐसे-ऐसे गुण हैं। वे श्रीभगवान् पर सभी प्रकार से आश्रित रहते हैं और भगवान् भी समस्त परिस्थितियों में उनकी रक्षा करने के लिए उत्सुक रहते हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के पंचम स्कन्ध के अन्तर्गत “जड़ भरत का सर्वोत्कृष्ट चरित्र” नामक नौवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।